International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(4): 257-260

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(4): 257-260
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-06-2022
Accepted: 22-07-2022

सुजीत कुमार
पीएचडी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सुजीत कुमार
पीएचडी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

चित्-त्व स्वरूप ब्रह्मतत्त्व के संदर्भ में

सुजीत कुमार

प्रस्तावना

श्रुति कहती है - 'वह चिन्मात्र है'. 'चिदेकरस है' 'उत्पत्ति विनाशरहित, अप्रतिहत - 'चैतन्य है'[1] तथा – 'उसे प्रज्ञा रूप से जाने' 'प्रज्ञान ब्रह्म है' 'विज्ञान ब्रह्म है' 'ज्ञान ब्रह्म ही है'[2] तथा — -'वह तम से परे है' 'उदय-अस्तरहित प्रकाश स्वरूप है' 'वही प्रकाश है, उसी प्रकाश से अन्य सब कुछ प्रकाशित होता है।'[3] इस प्रकार चितु, ज्ञान व प्रकाश इन तीन रूपों में कहा गया परमतत्त्व का स्वरूप क्या है?

चित् शब्द 'चिती सञ्ज्ञाने' । धातु से (क्विप् प्रत्यय से) निष्पन्न है। सज्ञान का अर्थ है जीवन, चेतना, प्रत्यय अनुभव जगत् में चर व अचर द्विविध पदार्थ दिखाई देते हैं । इनमें संज्ञान– (जीवन या अनुभूति) रहित को अचर जड़ कहते हैं। जिन वस्तुओं को जड़ समझा जाता है, उनमें ज्ञान-शून्यता, किसी के द्वारा प्रकट किया जाना भी देखा जाता है । ऐसे जड़ से विपरीत या अतीत सञ्ज्ञान-सार या अनुभूति का मर्म होना ब्रह्म का चित् होना है । वहचैतन्य का उत्स है जगत् के आधार रूप में जो तत्त्व है वह अवश्य जगत् में दिखाई देने वाली प्रत्येक सीमा, अभाव, न्यूनता से रहित व इससे परे है - - इस धारणा के साथ-साथ जगत् का मूल खोजत हुई विचारधारा में जीवन तथा ज्ञानतत्त्व का अन्वेषण परमतत्त्व को चित्स्वरूप जानकर चरितार्थ हुआ ।

ब्रह्म चित्स्वरूप है । इनमें से जीवन वह वस्तु है चित् की ही त्रिविध अभिव्यक्तियाँ हैं- जीवन, ज्ञान व प्रकाश । जिससे रहित वस्तु जड़ कहलाती है । 'जड़' का अभिप्राय है जहाँ प्राणमय कोश प्रकट न हो, अथवा मनोमय एवं विज्ञानमय कोश उद्भूत न हों, अथवा चेतन की संकुचित शक्ति ही जड़ता है । जड़ कोई चेतन से विपरीत स्थिति नहीं । विपरीतता मानने से तो चैतन्य की सर्वव्यापकता एवं अखण्ड अद्वितीयता व्याहत होगी । वह जीवनतत्त्व क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में प्राण, मन व बुद्धि ये तीन वस्तुएं आयीं किन्तु कोई उचित, अपेक्षित समाधान न कर पाईं, प्राण का स्वरूप वायु मात्र है जो देह को बनाने वालेअन्य भूतों में से ही एक है । प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्य उप०, बृहदारण्यक, में, इनके

भाष्य में तथा बृह०भा० वार्त्तिक में एक सूक्ष्मतर प्राणतत्त्व की चर्चा की गई है जो पञ्चप्राणों में से अन्यतम नहीं, प्रत्युत ये पञ्चप्राण उस मुख्य प्राण की वृत्तियाँ हैं । वह मुख्य प्राण मन-बुद्धि के प्रयाण के पश्चात् भी शरीर में रहता है अतः इनसे सूक्ष्मतर एवं स्थिरंतर है, उस प्राण के प्रयाण करने पर ही शरीर से जीवन भी जाता है। यह प्राण हिरण्यगर्भ नाम से जीव के निकटतम या समकक्ष वस्तु है । किन्तु, वह भो तो स्वयं किसी के द्वारा नियन्त्रित है। मन तथा बुद्धि भी इन सब स्थूल भूतों के ही सूक्ष्म रूपों से बने हैं तथा अपना संयोग किसी देह के साथ रखने व हटाने में समर्थ नहीं, अतः इन सबके परे स्थित ही कोई तत्त्व जीवन व अनुभूति का उत्स है । वास्तविक तत्व या वस्तु जब एक ही है तो यह जीवन व अनुभूति तत्व भी उससे पृथक् नहीं हो सकता अतः यह परमतत्व का स्वरूप ही है ।

पहले सत्ता की व्याख्या में देखा गया कि किसी भी रीति से उसका अर्थ किया जाय, विद्यमानता उसके साथ-साथ संश्लिष्ट है। यही नहीं, विद्यमानता ही वस्तु की सत्ता की ओर ध्यान आकर्षित करती है। विद्यमान शब्द का अर्थ है "जाना जाता हुआ" । कोई वस्तु है या नहीं, इसका प्रथम निर्णायक होता है उसका जाना जाना । इसीलिये सत्ता का • प्रथम (आस्तिक व नास्तिक सभी दर्शनों में आपाततः स्वीकृत) लक्षण प्रकाशमानता (प्रकाशितहोना) ही माना जाता है, फिर इस प्रकाशमानता से वास्तव में सत्ता का नियत (अयुतसिद्ध) सम्बन्ध है या नहीं इसका विचार उठने पर स्वयंप्रकाशमानता ही वास्तविक सत्ता है, ऐसा निर्धारण वाचस्पति मिश्र द्वारा भामती में किया गया। इस प्रकार स्वयंप्रकाश होना भी परमतत्त्व के स्वरूप का अपरिहार्य पक्ष बना । जगत् की जड़ता किसी अन्य द्वारा प्रकाशित होने से और आत्मा की चित्स्वरूपता उससे विपरीत स्वयंप्रकाश होने से है। इनमें से जो चित् है वही सत् है क्योंकि स्वयंप्रकाश है और जो वैसा नहीं वह अचित् (जड़) है, और इसीलिये अमृत (असत्य) है । किन्तु किसी न किसी प्रकार की प्रकाशमानता उसमें है अवश्य, जिसके द्वारा इसके सत् होने की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। जागतिक वस्तुओं की प्रकाशमानता का रहस्य भी परमतत्त्व का चित्स्वरूप होना ही है । उसी के प्रकाश से जगत् प्रकाशमान (प्रकाशित, प्रकाशयुक्त) है और वह स्वयं प्रकाश ही है । प्रकाश होने का अर्थ है ज्ञान स्वरूप होना, अर्थात् स्वयंप्रकाश होना, अर्थात् अन्य किसी प्रकाश द्वारा प्रकाशित न होना[4]; यहाँ प्रकाश का अर्थ जड़ आलोक नहीं, अर्थात् अग्नि या तेजस् का गुण रूप प्रकाश नहीं, केवल ज्ञान-रूपता की अभिव्यक्ति के लिये आलोक या प्रकाश की समता को लेकर ही प्रकाश, ज्योति इत्यादि व इनके समानार्थक शब्दों का प्रयोग ब्रह्म के स्वरूप- प्रतिपादन में किया गया है, स्थूल ज्योति वहाँ अभिप्रेत नहीं । केवल ज्योति के एक उपयोग — अपने सम्पर्क में आने वाले सभी कुछ को स्पष्ट अभिव्यक्त, ज्ञानगम्य बना देना के साम्य को लेकर ही चित् के वास्तविक अर्थ संज्ञान में प्रकाशरूपता अर्थ का योग हुआ है। वही 'संज्ञान', 'प्रज्ञान', 'विज्ञान' इत्यादि शब्दों में कहा गया तथा 'स्वयंज्योतिः' 'भाः' 'आदित्यवर्णः' 'देवः' इत्यादि रूप में त्रिवृत हुआ है, क्योंकि मूल ज्ञान का विश्लेषण करते समय उसे अन्धकार के विरोधी प्रकाश की समता लेते हुए ही समझाना संभव हुआ। और इस प्रकाश को परमतत्त्व से अभिन्न होने के लिये स्वयंप्रकाश होना अनिवार्य था ।

योगवासिष्ठ में बहुधा कहा गया है कि परम वस्तु, शुद्धसंवित्-मय तथा प्रकाश स्वरूप है, वही स्वयं को तथा अपने से अन्य के समान प्रतीत होने वाले समस्त दृश्यवर्ग को प्रकाशित करता है[5]

आचार्य गौड़पाद द्वारा माण्डूक्यकारिका में ब्रह्म के प्रति अभिन्न रूप से कहे गये 'ज्ञानालोकम्' 'अनिद्रम्' 'अस्वप्नं''[6] 'सकृद् - विभातं' 'सर्वशं''[7] सकृज्ज्योतिः''[8] इत्यादि विशेषण ब्रह्म के चित्-स्वरूप के प्रतिपादक हैं। इनसे चित् के प्रमुख रूप से दो अर्थ अवगत होते हैंज्ञान एवं प्रकाश । 'तुरीय तत्त्वत्' सदा 'सर्वदृक् ' है, 'अनन्यदृक्' है तथा 'देव' है, अर्थात् स्वयं ही प्रकाश-स्वरूप होने के कारण, वह किसी अन्य प्रकाश द्वारा प्रकाशित नहीं होता एवं उसके प्रति सर्वदा सब कुछ प्रकाशित है।[9]

भगवान् शङ्कराचार्य ने शारीरकभाष्य में जगत् की दृष्ट नियमितता को हेतु बनाकर इसके मूल का चैतन्य या चित् होना सिद्ध किया है । चैतन्य के अर्थ जीवनतत्व, ज्ञान तथा प्रकाश तीनों ही लिये हैं। ब्रह्म के प्रति दिये गये 'शुद्ध' तथा 'बुद्ध' विशेषण चित्पक्ष के ही समर्पक हैं ।[10]

सुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि में ब्रह्म की स्वप्रकाशता व सर्वप्रकाशकता को सिद्ध करते हुए कहा है कि चिदात्मा (चित्स्वरूप आत्मा) की सिद्धि होने पर ही (अन्तःकरण आदि में उसके आभास का उदय होने से आने वाली स्फुटतर योग्यता से ही) 'इदं ' (-प्रमाता से लेकर तृण पर्यन्त सब जड़मिश्र व जड़ पदार्थ) की सिद्धि होती है, और उस प्रकार की सिद्धि के अभाव में कुछ भी स्फुरित नहीं होता। वह

चिदात्मा स्वतः सिद्ध है, सबका व्यञ्जक है, व्यङ्ग्य किसी का भी नहीं।[11]

बृहदारण्यकभाष्यवार्त्तिक में सुरेश्वराचार्य ने संवित् तथा अनुभूति शब्द का प्रयोग प्रायः ब्रह्म या आत्मतत्त्व के पर्याय रूप से ही किया है। संवित् व आत्मा को अभिन्न तत्त्व कहा भी है।[12]

सर्वज्ञ मुनि ने संक्षेपशारीरक में ब्रह्म के प्रति 'अनृतजडविरोधिरूपं' विशेषण देकर ब्रह्म का सत्य-ज्ञान-स्वरूप होना कहा है।[13] ' जड़ का विरोधी होना ही चित् होना है। यह चित्स्वरूप का अभावात्मक निर्देश है जो बाद में चित्सुखाचार्य तथा मधुसूदन सरस्वती के प्रतिपादनों में विशेष स्फुट हुआ है।

आनन्दबोध ने न्यायमकरन्द में कहा है कि जिसकी ज्योति से निखिल भासित होता है, जो स्वयं किसी अन्य सजातीय या विजातीय प्रकाश द्वारा प्रकाशित नहीं होता, वह शुद्धचिन्मात्र ब्रह्म है।[14]

विमुक्तात्मा ने इष्टसिद्धि में परमतत्व को अधिकतर अनुभूति संज्ञा दी है। कहा है अनुभूति अमेया है, अन्य के द्वारा अनुभाव्य नहीं। उसका न पहले अभाव था, न आगे होगा, अतः वह अजा है।[15]

प्रकाशात्मा ने पंचपादिकाविवरण में स्वप्रकाशता को हेतु बनाकर ही आत्मा को जड़ से पृथक् करके उसे सभी कुछ का प्रकाशक सिद्ध किया है। किसी इन्द्रिय द्वारा जाना न जाते हुए भी सदा अपरोक्ष स्वानुभूति गम्य होने से ही आत्मा स्वप्रकाश है। और वही सूर्यालोक के समान सभी प्रकार के विषय प्रकाशों (ज्ञानों) का सर्वसाधारण आश्रय है।[16]

पञ्चदशी में प्रारम्भ में ही तत्त्व को 'संवित्' संज्ञा देकर उसे उदय अस्त-रहित एवं स्वयम्प्रभा कहा है।[17] स्वप्रकाशता में हेतु दिया है अवेद्य होते हुए भी अपरोक्ष होना।[18]

चित्सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका में आत्मा के स्वयंप्रकाशत्व पर अत्यधिक विस्तृत आलोचना की है। 'स्वयंप्रकाश' के अर्थ में पूर्वपक्ष में ११ विकल्प कहकर उनका निरास करने में अर्थ को अधिकाधिक स्पष्टत

बनाते हुए अन्तिम विकल्प - अवेद्यता विशिष्ट अपरोक्ष व्यवहारयोग्यता स्वयंप्रकाशता है— को सिद्धान्त रूप में स्थिर किया है।[19] इसकी अधिक विवेचना ज्ञान-मीमांसा खण्ड में प्रकृत अवसर पर की जायेगी।

मधुसूदन सरस्वती द्वारा सिद्धान्तबिन्दु में संक्षेप से तथा अद्वैतसिद्धि में विस्तार से ब्रह्म के ज्ञानत्व, स्वप्रकाशत्व पक्ष पर विचार हुआ है। ब्रह्म का स्वरूप भूत यह ज्ञानत्व क्या है इस पर सात विकल्प उठाये गये हैं- १. ज्ञानत्व क्या कोई जाति है ? या २ जड़ का विरोधी होना, या ३ जड़ से अन्य होना, या ४ अज्ञान का विरोधी होना, ५ साक्षात् व्यवहार का जनक होना, या ६ अर्थ (विषय) - प्रकाशात्मक होना, या ७ नैयायिक आदि को अभिमत ज्ञान पदार्थ होना ? इसी प्रकार स्वप्रकाशत्व के अर्थ के लिये भी अनेक विकल्प उठाये हैं। उन सबका विचार 'ज्ञान-चर्चा' में किया जायेगा |

गङ्गाधरेन्द्र सरस्वतो ने स्वाराज्यसिद्धि में अपने प्रकट होने तथा दूसरे को प्रकट करने में अन्य किसी की अपेक्षा न रखना चित् होना है' ऐसा चित्त्व का लक्षण कहकर कहा है कि वह चित् स्वयंज्योतिः आत्मस्वरूप ही है।[20] ब्रह्म चित्स्वरूप है, इसके लिये कुछ हेतुओं का संग्रह किया है— ब्रह्म चित्स्वभाव है क्योंकि

1. आत्मा है, अनात्मा (जड़) नहीं।
2. वही ईक्षणकर्त्ता है, सृष्टि का संकल्प करता है, यह जड़ का कार्य नहीं हो सकता।
3. अखिलवशी है, जड़ वस्तु स्वयं दूसरे के वश में रहती है, किसी को अपने वश में नहीं करती।
4. वही निखिल शास्त्र का पुनरुद्धारक अथवा कारण है।
5. वह सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प है। जीव-जगत् की सृष्टि या अभिव्यक्ति का मूल है परमतत्त्व का ईक्षण रूपी तपस्। उसमें सामान्य ईक्षण है – 'एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय'। यही उस का 'काम' है, जो सत्य है क्योंकि उसी क्षण, उसी प्रकार फलित होता है। पुनः ईश्वर रूप में स्थित परमतत्व का यह ईक्षण कि इस जीव को इस कर्म का यह फल मिले—उस का सङ्कल्प है जो उसी रूप में फलित होने के कारण सत्य है। ये कामना आदि जड़ में सम्भव नहीं। अन्तःकरण भी सङ्कल्प धर्म वाला है, किन्तु उसमें सत्यत्व नहीं।
6. चन्द्र, सूर्य, अग्नि व वाणी की ज्योति का मूल वही है ऐसा श्रुति ने स्पष्ट कहा है।
7. वह साक्षात् अपरोक्ष स्वरूप है, उसे किसी के द्वारा नहीं जाना जाता।
8. वह प्राणिमात्र के कर्मों का अध्यक्ष व साक्षी है ऐसा कहा गया है।
9. वह सर्वज्ञ है।
10. उसी के प्रकाश से समस्त जगत् प्रकाशित होता है, वह स्वयं प्रकाश-स्वरूप है ऐसे अनेक स्फुट श्रुति वचन हैं- इसलिये एकमात्र सत् तत्त्व चित् भी है।[21]

प्रायः सभी प्रतिपादनों में सत्ता के साथ एकता एवं चित्-स्वरूपता अविनाभावरूप से निबिड़ सम्बद्ध है जगत् के मूल के सत् होने, अद्वितीय होने के समान ही, साथ ही

स्वयंप्रकाश तथा सर्वप्रकाशक होना भी नियतसिद्ध या अनिवार्य है।

सन्दर्भ सूची:

1. चिदेकरसो ह्ययमात्मा | नृ० उ० १।
   उत्कृष्टतमं चिन्मात्रम् | नृ० उ० ५।
2. प्रज्ञ त्येनदुपासीत। बृह० उ० ४ | १ | २
   विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। बृह० उ० ३।९।२८।
   सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तै० उ० २१११।
   प्रज्ञानं ब्रह्म। ऐत० ५।३।
3. आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। इवे० ३१८।
   तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। कठ० २।२।१५ |
4. इस विषय का विस्तृत विवेचन 'ज्ञानमीमांसा' में द्रष्टव्य है।
5. ज्ञाता ज्ञानं तथा ज्ञेयं द्रष्टादर्श नदृश्यभूः।
   कर्ता हेतुः क्रिया यस्मात् तस्मै ज्ञप्यात्मने नमः ॥ यो० वा० १ | १ | २
6. वेदनस्य प्रकाशस्य दृश्यस्य तमसस्तथा।
   वेदनं यदनाद्यन्तं तद्रूपं परमात्मनः । यो० वा० ३।१०।४७ ।।
   य आत्मानं पदार्थं च प्रकाशयति दीपवत् । वही ३।५।१०
7. मा० का० २।१६
8. वही ३१३५, ३६
9. वही ३।३७
10. वही ३।३७
11. अस्ति तावद् ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभावम् । ब्र० शां० भा० १॥१॥२, पृ० ३०।
    नित्यचं तन्यस्वरूप एवात्मा" । ब्र० शां० भा० २।३।१८, पृ० ५०१।
12. यत्सिद्धाविदमः सिद्धियंदसिद्धौ न किञ्चन।
    प्रत्यग्धमैकनिष्ठस्य याथात्म्यं वक्ष्यते स्फुटम् ॥ नै० सि० १।४ ।।
13. अजमेकं स्वतः सिद्धं प्रत्यरूपमनन्यदृक्। बृ० भ० वा० १।२।२६।।
    सतत्त्व कमिदं सर्वमिति संसाध्य यत्नतः।
    तस्यापि संविन्मात्रण पूर्णतैवोच्यते सतः ॥ वही १ ॥ २ ॥ २९ ॥
    नघटार्थावपहृत्य संवित्सद्रूपमात्रया।
    अवर्गत्यात्मना सत्त्वं सर्वदृक् स्यादविक्रियः॥ वही १४९८९ ॥
14. सं० शा० १।१।
15. यद्भासा निखिलं विभाति विषयो यो न स्वयं ज्योतिषाम्।
    यस्याहुभु वनोद्भवस्थितिलयान् लीलामयान् सूरयः । न्या० म० ११ पृ० १।
16. यानुभूतिरजामेयानन्तात्मानन्दविग्रहा । 'इ० सि० १११, पृ० १।
    ननु अनुभवित्रात्मना विना नास्त्यनुभूतिः, तत्कथं साऽनन्ता । नैष दोषः । यतस्सा एव सः ।' ...सोऽप्यनुभूतिस्वभावः "अतस्तैवात्मा ॥ अनन्तत्वात् सैव परमात्मा || इ० सि० पृ० २४।
17. अनुमानमपि स्वयंप्रकाशोऽयमात्मा स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकाभावात्प्रदीपसंवेदनवत् । आत्मा स्वयंप्रकाशो विषयप्रकाशकर्तृत्वात्प्रदीपवत् । तथा आत्मा स्वयंप्रकाशो विषयप्रकाशाश्रयत्वादालोकवत् । अजन्यप्रकाशगुणश्चात्मा प्रकाशगुणत्वाद् आदित्यादिवत्। आत्मा स्वयंप्रकाशः अनिन्द्रियगोचरत्वे सत्यपरोक्षत्वात्संवेदनवत्। पं० पा० वि० (लाज० सं०) पृ० १९७-९८।
18. नोदेति नास्तमेत्येका संविदेषा स्वयम्प्रभा ॥ पं० ५० १।७ ।।
19. विषयी नाक्षविषय: स्वत्वान्नास्य परोक्षता।
    अवेद्योऽप्यपरोक्षोऽतः स्वप्रकाशो भवत्ययम्।
20. स्वश्चासौ प्रकाशच स्वप्रकाश: ? स्वस्य स्वयमेव प्रकाश इति वा ? सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यत्वं वा ? स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकविरहितत्वं वा ? स्वव्यवहारहेतुप्रकाशत्वं वा? ज्ञानाविषयत्वं वा ? ज्ञानाविषयत्वे सत्यपरोक्षत्वं वा? व्यवहारविषयत्वे सति ज्ञानाविषयत्वं वा? स्वप्रतिबद्धव्यवहारे सजातीयपरानपेक्षत्वं वा? अवेद्यत्वे सत्यप रोक्षव्यवहारविषयत्वं वा? तद्योग्यत्वं वा? त० प्र० पृ० ४, ५।
21. स्वपरप्रथायामन्यनिरपेक्षत्वं चित्त्वम्। स्वा० सि० पृ० १५९।
22. आत्मत्वादीक्षितृत्वादखिलवशितया
    शास्त्रयोनित्ववादात्,
    कामाभिध्योपदेशाच्छशितपनमुखद्योतिभारूपतोक्तः ।
    साक्षादेवापरोक्षादसुकृतसुकृताध्यक्ष्य साक्षित्ववादात्,
    सर्वज्ञज्ञादिशब्दात्स्फुटवच नशतैश्चापि सच्चित्स्वभावम् ॥
    स्वा०सि० २।३९ ॥